भारतीय संस्कृति और तुलसीदास

डॉ. संजय कुमार

डॉ. सरिता

संस्कृति के वैश्विक परिदृश्य में सद्भाव, बन्धुत्व, विश्व कल्याण की भावना, सहिष्णुता, उदारता, कर्मप्रधानता और आध्यात्मिकता जैसे गुण यदि किसी राष्ट्रीय संस्कृति का हिस्सा हैं तो वह भारतवर्ष है। संस्कृति की ये विशेषताएँ भारतीय सनातन परम्परा का अनुकरण रही हैं। प्राचीन काल से ही भारत में रीति–रिवाज, विविध सभ्यताएँ, सामाजिक वर्ग और वस्तु विनिमय जैसी व्यवस्थाएँ उपस्थित रही हैं, इसी कारण से यहाँ संस्कृति के वे सभी रूप हैं जो सामाजिक सौंदर्य को वृद्धि प्रदान करते हैं। विश्व में 'वसुधैव कुटुम्बकम' की संस्कृति का उन्नायक भारत ही है। भारतीय संस्कृति का उद्गम वैदिक युग से भी पुराना है, जिसे प्राक् वैदिक संस्कृति के रूप में जाना जाता है। हर एक काल खण्ड की अपनी मान्यताएँ होती हैं, परन्तु मनुष्य के समाजिक जीवन को किस प्रकार अनुशासित रखा जा सकता है यह भारतीय संस्कृति के हर कालखण्ड की विशिष्टा रही है। किसी भी देश की मानवीय संस्कृति में भाषा, प्रकृति और जलवायु का बहुत योगदान होता है। भारतीय साहित्य मीमांसा में इसे भक्ति आन्दोलन के समय से देखा जा सकता है। यह भक्ति की स्थापना और उसके प्रसार का युग तो था ही, इसके साथ–साथ यह सांस्कृतिक उत्कर्ष का भी युग था। भारतीय साहित्य में तमिल, संस्कृत, हिन्दी, बंगला, मराठी और प्रादेशिक भाषाओं के साहित्य लेखन में विविधता तो मिल सकती है, परन्तु इन सब में सांस्कृतिक जागरण के चिन्ह एक ही प्रकार के देखने को मिलेंगे। सभी भाषाओं के साहित्य में भक्ति आन्दोलन ने पाठकों और आलोचकों का ध्यान आकर्षित किया है, इसका कारण यह था कि यह एक तरह से साधना से अधिक भावना पर बल देता है। कबीर, तुलसी, जायसी, सूर और मीरा के पदों में भाक्ति के साथ–साथ सांस्कृतिक उत्कर्ष को देखा जा सकता है।

भक्ति काल में तुलसीदास का सांस्कृतिक दर्शन रामकाव्य में स्थापित आदर्श मूल्यों के रूप में देखा जा सकता है। तुलसीदास का युग सांस्कृतिक दृष्टि से संक्रमणकाल का युग था, जिसमें सामाजिक स्तर पर विषमताएँ चरम पर थी, 'समाज में धन की मर्यादा बढ़ रही थी। दरिद्रता, हीनता का लक्षण समझी जाती थी। पण्डितों और ज्ञानियों का समाज के साथ कोई भी संपर्क नहीं था। सारा देश विश्रृंखल, परस्पर विच्छिन्न, आदर्शहीन और बिना लक्ष्य का हो रहा था। एक ऐसे आदमी की आवश्यकता थी जो इन परस्पर पर विच्छिन्न और दूर–विभ्रष्ट टूकड़ों में योग–सूत्र स्थापित करे। तुलसीदास का आविर्भाव ऐसे ही समय में ही हुआ।'[1] इसलिए इस युग में ऐसे महापुरूष की जरूरत थी जो हताश जनता में मानवीय संस्कारों को इतना व्यावहारिक बना दे जिससे जनता की वृत्तियों में बदलाव किया जा सके। इसी समय तुलसीदास का उदय होता है। इनके विषय में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन है कि 'भारतवर्ष का लोकनायक वही हो सकता है, जो समन्वय करने का अपार धैर्य लेकर आया हो। भारतीय समाज में नाना भांति की परस्पर विरोधिनी संस्कृतियाँ, साधनाएँ, जातियों, आचार–विचार और पद्धतियाँ प्रचलित हैं।'[2] तुलसीदास की सांस्कृतिक जागरण की पृष्ठभूमि में मुस्लिम आक्रान्ताओं का साम्राज्य था, जो छल, छद्म और प्रताडना से भरा हुआ था। सामाजिक जीवन में आसक्ति पैदा करने के लिए तुलसीदास भक्ति को अवलम्बन बनाते हैं और इसके लिए राम के चरित्र को आदर्श के रूप में स्थापित करते हैं। समाज में इस विषमता का आगमन तुलसीदास कलि के प्रभाव के कारण मानते हैं। इस विषमता से मानव संस्कृति को पुनः किस प्रकार स्थापित किया जा सकता है, इसके लिए तुलसीदास भक्ति दर्शन के विविध रूपों का दृष्टांत प्रस्तुत करते हैं जो समाज से सभी वर्गों का नेतृत्व करता है। समाज में समानता, बन्धुता और कर्म तभी प्रदान बन पायेंगे जब मानवीय गुणों को धारण किया जायेगा। इसलिए 'गोस्वामी जी की भक्ति की सबसे बड़ी विशेषता है उसकी सर्वांगपूर्णता। जीवन के किसी पक्ष को सर्वथा छोड़कर वह नहीं चलती है। सब पक्षों के साथ उसका सामंजस्य है। न उनका कर्म या धर्म से विरोध है, न ज्ञान से। धर्म तो उसका नित्य लक्षण है। तुलसी की भक्ति को धर्म और ज्ञान दोनों की रसानुभूति कह सकते हैं। योग का भी उसमें समन्वय है, पर उतने ही का जितना ध्यान के लिए, चित्त को एकाग्र करने के लिए आवश्यक है।'[3]

तुलसीदास के रचनात्मक काव्य में सांस्कृतिक उत्कर्ष युगीन संदर्भों में देखा जा सकता है। यहाँ मात्र तुलसी का सांस्कृतिक चित्र ही दिखाई नहीं देता, अपितु यह साध्य के रूप में भी दिखाई देता है। इस समय नाथपंथी, सिद्धों के अलावा शैव और शाक्त जैसे भक्ति पंथ यहाँ पहले से ही विद्यमान थे। कहने का तात्पर्य यह है कि यह एक सामाजिक और सांस्कृतिक संक्रमण का काल था, फिर भी तुलसीदास उन ताकतों को सामाजिक विचलन का उत्तरदायी मानते हैं

जो भारतीय संस्कृति के हितकर नहीं थी। ऐसे समाज विरोधी कारकों को तुलसीदास आड़े हाथों लेते हुए भारतवर्ष की आध्यात्मिक संस्कृति के उत्कर्ष को प्रस्तुत करते हैं–

देखत भीमरूप सब पापी। निसिचर निकर देव परितापी।

जेहि विधि होई धर्म निर्मूला। सो सब करहिं बेद प्रतिकूला।

नहिं हरिभगति जग्य तप ज्ञाना। सपनेहु सुनिअ न बेद पुराना।।

अस भ्रष्ट अचारा भा संसारा धर्म सुनिअ नहिं काना।

तेहि बहु विधि त्रासइ देस निकासइ जो कह बेद पुराना।।

भारतीय संस्कृति में मानवीय मूल्यों की सनातन परम्परा रही है। इसके अन्तर्गत उन आदर्शों को समाज में स्वीकृति मिलती है जो जीवन को सृजनशील बना पाने में समर्थ होते हैं। सदाचारण और शिष्टाचार सभी सांस्कृतिक मूल्यों का अवलम्बन है। तुलसी साहित्य में इस पर बल दिया गया है कि यदि समाज के सामने राम जैसा आदर्श व्यक्तित्व है तो निश्चित रूप से उन विकल्पों का क्रियान्वयन किया जा सकता है जिनसे सामाजिक विषमताओं का निराकरण किया जा सके। तत्कालीन परिस्थितियों ने तुलसीदास के सामने इन गुणों की आवश्यकता को पैदा किया। इस संबंध में रामजी तिवारी का कथन है– 'गोस्वामी तुलसीदास वैयक्तिकस्तर पर एक विरक्त का जीवन जीते थे किन्तु चेतना के स्तर पर लोक जीवन के प्रति उनमें गहरी संसक्ति थी। उनकी कृतियों में तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक स्थितियों का स्पष्ट चित्र ही नहीं मिलता अपितु क्षुब्ध हृदय की तीव्र प्रतिक्रिया और उसे बदल देने के उपायों के संधान की विकलता भी दिखायी पड़ती है।'[4]

समाज में वर्गीय व्यवस्था हो, इसके लिए तुलसीदास वर्णाश्रम पद्धति का अनुकरण करते हैं। इसे वे सामाजिक सांस्कृतिक वैविध्य और कौशल का आधार भी मानते थे। इसके अभाव में ही समाज में बिखराव उत्पन्न होता है। रामचरितमानस में विविध स्थलों पर इस व्यवस्था के उत्कृष्ट रूप को देखा जा सकता है। तुलसीदास ने इसमें दिखाया है कि किस प्रकार समाज के विविध वर्गों से संबंध रखने वाले भील, किरात व अन्य वनवासी अपने आचरण से भगवान राम के सामने दिव्य रूप का अधिकार प्राप्त करते हैं –

आश्रम बरन धरम बिरहित जग लोक बेद मरजाद गई है।

प्रजा पतित पाखंड पाव रत अपने अपने रंग रई है।।

धार्मिक आंदोलनों का प्रभाव भी भक्ति काल पर देखा जा सकता है। तुलसीदास का सांस्कृतिक दर्शन विविध संप्रदायों से प्रभावित रहा है, इसमें बौद्ध, जैन, शैव, शाक्त और वैष्णैव धर्मों की साधना तथा भक्ति पद्धितियों ने इस काल को विविध सांस्कृतिक तत्वों से समृद्ध किया है। इन धार्मिक पंथों का दर्शन अलग–अलग अवश्य था, परन्तु मानवीय मूल्यों का रूप एक ही था। धर्म संस्कृति का मूल होता है और तुलसीदास राम के आदर्श चरित्र का रेखांकन करते हैं जो धर्मपरायण हैं। परोपकार और सत्य उनके व्यक्तित्व के अभिन्न अंग हैं–

परहित सरिस धर्म नहीं भाई।

तुलसी की भक्ति व्यक्तित्व के उत्थान का मार्ग है जो प्रेम, परोपकार और धर्म के सद्गुणों से परिष्कृत है, इसमें भौतिक इच्छाओं का परित्याग है। जीवन दर्शन का यह रूप ही तुलसीदास को महान बना देता है।अतः भारतीय संस्कृति विविधता के बावजूद भी एक है। वैश्विक सुखों की कामना अथवा प्रार्थना यदि किसी देश की संस्कृति का अहम हिस्सा है तो वह भारत है–

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुखभाग भवेत्।।

लोक आग्रह और अपेक्षाएँ भक्ति काल की प्राथमिकता का आधार बने है। तुलसीदास इसके लिए जनजीवन के मार्मिक प्रसंगों का चित्र खींचते हैं। लोक समाज की अनुभतियों का आकलन उनके जीवन में व्याप्त आचरण और

व्यवहारों के माध्यम से ही संभव हो सकता है। तुलसीदास अपने रचनात्मक काव्य में युगबोध की प्रस्तुति करते हैं, परन्तु यह समाज के हित का नहीं है, इसे वे कलि प्रभाव का कारक भी मानते हैं। फलस्वरूप समाज की भावनाओं का अवचेतन उद्वेलित करना ही सांस्कृतिक प्रसंगों का आधार बना है।अपने काव्य में तुलसीदास सामाजिक विकारों का उल्लेख करते हैं। इस संबंध में रामस्वरूप चतुर्वेदी का कथन है– 'जीवन के तमाम सारे छद्म, छल–फरेब, पाखंडों का एक जमघट, धूर्तता–कुटिलता के कार्य व्यापार, एक ऐसा समाज जिसमें ठग हैं, व्यभिचारी हैं, झूठे और बेईमान हैं, लम्पटता है। काशी के धर्म के पाखंड तथा कदाचार, चोर, उचक्के, बटमार सब उन्हें मिलते हैं। धर्म के ध्वजावाहकों का असली चेहरा उनकी आँखों के सामने आता है। पाप, दुष्कर्म, अकाल, माहमारी, दारिद्रय का पूरा संसार उनके समक्ष उद्घाटित होता है। चापलूसी, स्वार्थ, मानवीय, सामाजिक, पारिवारिक, नाते–रिश्तों का क्षय, उन्हें भीतर से हिला देता है।'[5] तुलसीदास इन सबसे मुक्ति पाने की इच्छा रखते हैं और उन साधनों की तलाश करते हैं जिनके बल पर समाज में सद्व्यवहार और प्रेम का वातावरण पैदा हो। इसलिए वे राम के अवतारी रूप का चुनाव करते है, उन्हे विश्वास है कि राम का आदर्श व्यक्तित्व ही समाज में चेतना और प्रगति ला सकता है, यही आम आदमी को विवेकशील बना सकता है और समाज हर संकट से निकल पाने में कामयाब हो सकता है।

तुलसीदास के राम शील, शक्ति और सौंदर्य आदि गुणों से युक्त हैं। ये गुण भारतीय संस्कृति के द्योतक हैं। मध्यकाल और आधुनिक काल के जितने भी भारतीय दार्शनिक व चिंतक हुए सभी ने वैश्विक स्तर पर इन गुणों का प्रचार करके भारतीय संस्कृति को लोकप्रिय बनाया है। ऐसे में मध्यकाल में तुलसी राम के श्रेष्ठ रूप को ही अपने साहित्य का अवलम्बन बनाते हैं। राम के चरित्र का अनुकरण ही लोकमंगल की स्थापना करता है। अपने मानवीय रूप में अवतारी कर्म करते हुए समाज में मंगल भाव उत्पन्न करते हैं। वे मर्यादा पुरूषोत्तम हैं। श्रद्धा और प्रेम उनके व्यक्तित्व कि विशिष्ट गुण हैं। सृष्टि के सभी जीव जन्तुओं से उनका प्रेम अनुकरणीय है। वे ऐसी व्यवस्था की परिकल्पना करते हैं जो मानव हृदय को द्रवित कर सके। इसलिए रामराज्य की आदर्श कल्पना ही उनका लक्ष्य है–

राम राज बैठे त्रैलोका। हरषित भए गए सब सोका।

बयरू न कर काहू सन कोई। राम प्रताप विषमता खोई।।

अपनी इन्हीं मान्यताओं और विश्वास के बल पर ही वे मानव जीवन में व्याप्त शारीरिक और मानसिक संतापों से छुटकारा पाते हैं–

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज काहू नहीं व्यापा।।

सब नर करहिं परसपर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत स्रुति नीती।।

तुलसीदास अपने उस जीवन दर्शन को स्थापित करने में सफल होते है जो सामान्य जन को कर्मयोगी और दृढ़निश्चयी बनाने के साथ–साथ उदार हृदयी भी बनाता है। निष्काम कार्य, त्याग और मानव सेवा के अभिमुख तुलसी का भक्ति दर्शन हमें भोग की संस्कृति से विरक्त करता है। विश्व में कर्म के ये आदर्श भारत के अतिरिक्त किसी भी देश की संस्कृति का हिस्सा नहीं हैं। साधुत्व, तप आदि मनुष्य को अवतारी के रूप में मान्यता देते हैं। तुलसीदास का साहित्य सांस्कृतिक बाहुल्य से भरा हुआ है। वे संस्कृति के किसी एक पक्ष का उल्लेख नहीं करते हैं, अपितु सर्वांगीण रूप से मानव चरित्र को प्रतिष्ठा प्रदान करते हैं। यही राम का आदर्श है और यही तुलसीदास की मानव संस्कृति है, जिसके विविध व्यवहारों को आज भी भारतीय जनजीवन में देखा जा सकता है।

निष्कर्षतः तुलसीदास अपने काव्य में भारतीय संस्कृति के उन सभी तत्वों का अनुकरण करते हैं जो मनुष्य के जीवन को श्रेष्ठ बना पाने में समर्थ हों। अपनी सृजनशीलता में संस्कृति की प्रतिबद्धता के कारण ही वे लोकनायक कहे जाते हैं। अपनी भक्ति में सुख, शांति और समृद्धि के सम्मिलन के कारण वह मानवीय आदर्शों का दृष्टान्त प्रस्तुत करते हैं। भारतीय संस्कृति, जिसका अनुकरण तुलसीदास अपने काव्य में जिन विशिष्ट रूपों में करते हैं, उसने समय के साथ–साथ वैश्विक समुदाय को भी बड़े स्तर पर प्रभावित किया है।